आचार्य नेमिचंद्र सिद्धांत-
चक्रवर्ती द्वारा रचित

# गोम्मटसार
# कर्मकाण्ड

Presentation Developed By:
Smt. Sarika Vikas Chhabra

पणमिय सिरसा णेमिं, गुणरयणविभूसणं महावीरं ।
सम्मत्तरयणणिलयं, पयडिसमुक्कित्तणं वोच्छं ॥ 1 ॥

- अर्थ—मैं नेमिचन्द्र आचार्य,
- ज्ञानादि गुणरूपी रत्नों के आभूषणों को धारण करने वाले,
- मोक्षरूपी महालक्ष्मी को देने वाले,
- सम्यक्त्वरूपीरत्न के स्थान ऐसे
- श्रीनेमिनाथ तीर्थंकर को मस्तक नवा-प्रणाम कर,
- ज्ञानावरणादि कर्मों की मूल और उत्तर प्रकृतियों के व्याख्यान करने वाले
- प्रकृतिसमुत्कीर्तन नामक अधिकार कहता हूँ ॥ 1 ॥

# ग्रन्थ प्रारंभ करने से पहले इनका व्याख्यान आवश्यक है

| | |
|---|---|
| नाम | • श्री गोम्मटसार कर्मकांड (अपर नाम – पञ्च-संग्रह) |
| कर्ता | • मूल कर्ता – सर्वज्ञ देव<br>• उत्तर कर्ता – आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती |
| प्रमाण | • 9 अधिकार, 972 गाथाएँ |
| निमित्त | • राजा चामुण्डराय |
| हेतु | • साक्षात् – अज्ञान निवृत्ति<br>• परम्परा – अभ्युदय, नि:श्रेयस की प्राप्ति |
| मंगल | • श्री नेमिनाथ तीर्थंकर को नमस्कार |

# पंच संग्रह

## जीवकाण्ड

- बंधक

## कर्मकांड

- बंध-स्वामी
- बध्यमान
- बंध-हेतु
- बंध-भेद

# ग्रन्थ की विषय-वस्तु

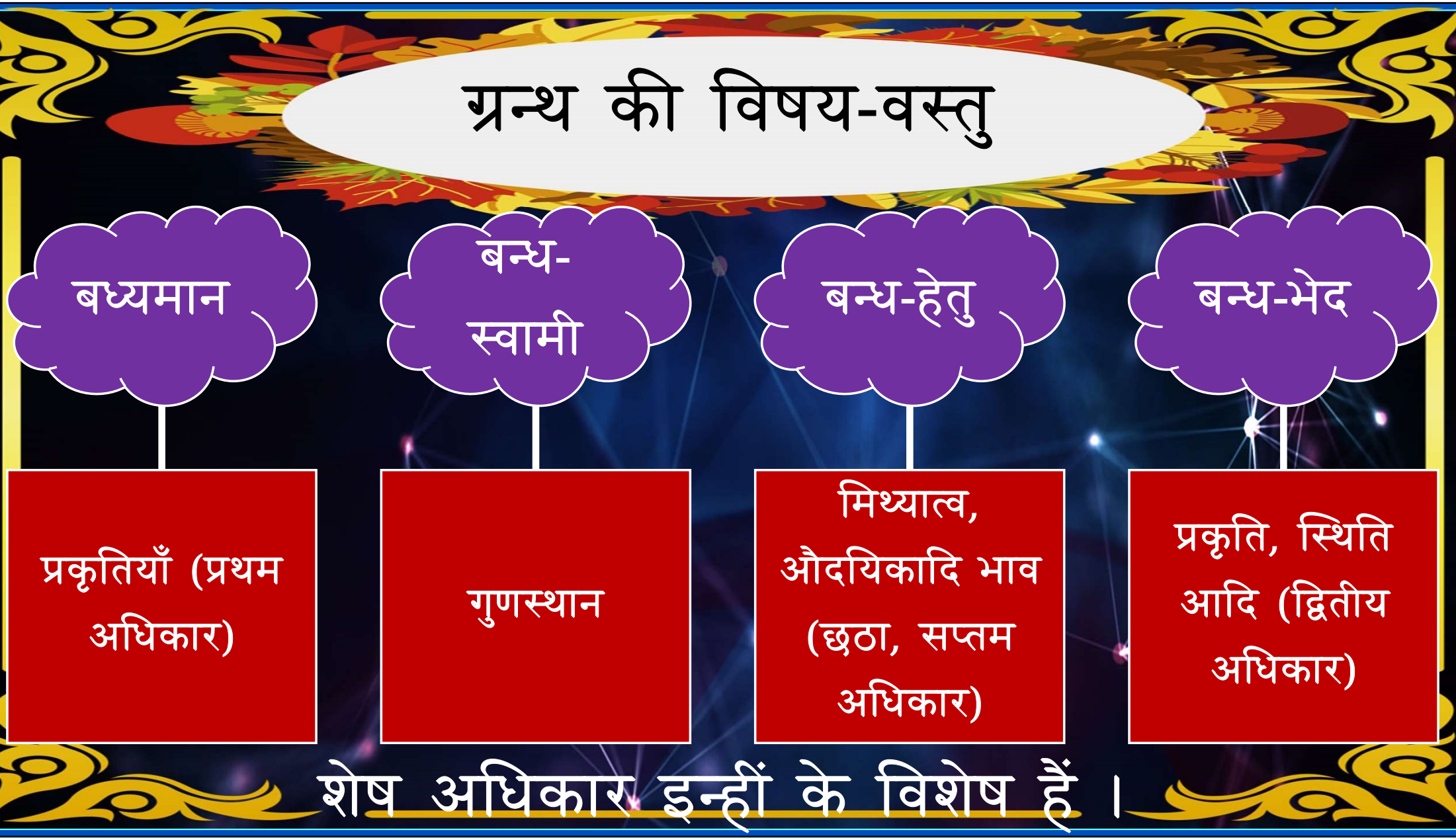


शेष अधिकार इन्हीं के विशेष हैं ।

# 9 अधिकार

- प्रकृति समुत्कीर्तन
- बंध-उदय-सत्त्व
- सत्त्वस्थान भंग
- त्रिचूलिका
- बंध-उदय-सत्त्व स्थान समुत्कीर्तन
- प्रत्यय
- भाव चूलिका
- त्रिकरण चूलिका
- कर्म-स्थिति

| | |
|---|---|
| गुणरयण विभूसणं | • ज्ञानादि गुणरूपी रत्नों के आभूषणों को धारण करने वाले |
| महावीरं | • मोक्षरूपी लक्ष्मी को देने वाले |
| सम्मत्तरयणणिलयं | • सम्यक्त्वरूपी रत्न के स्थान |

ऐसे श्रीनेमिनाथ तीर्थंकर को मस्तक नवाकर
प्रकृति समुत्कीर्तन अधिकार को कहता हूँ ।

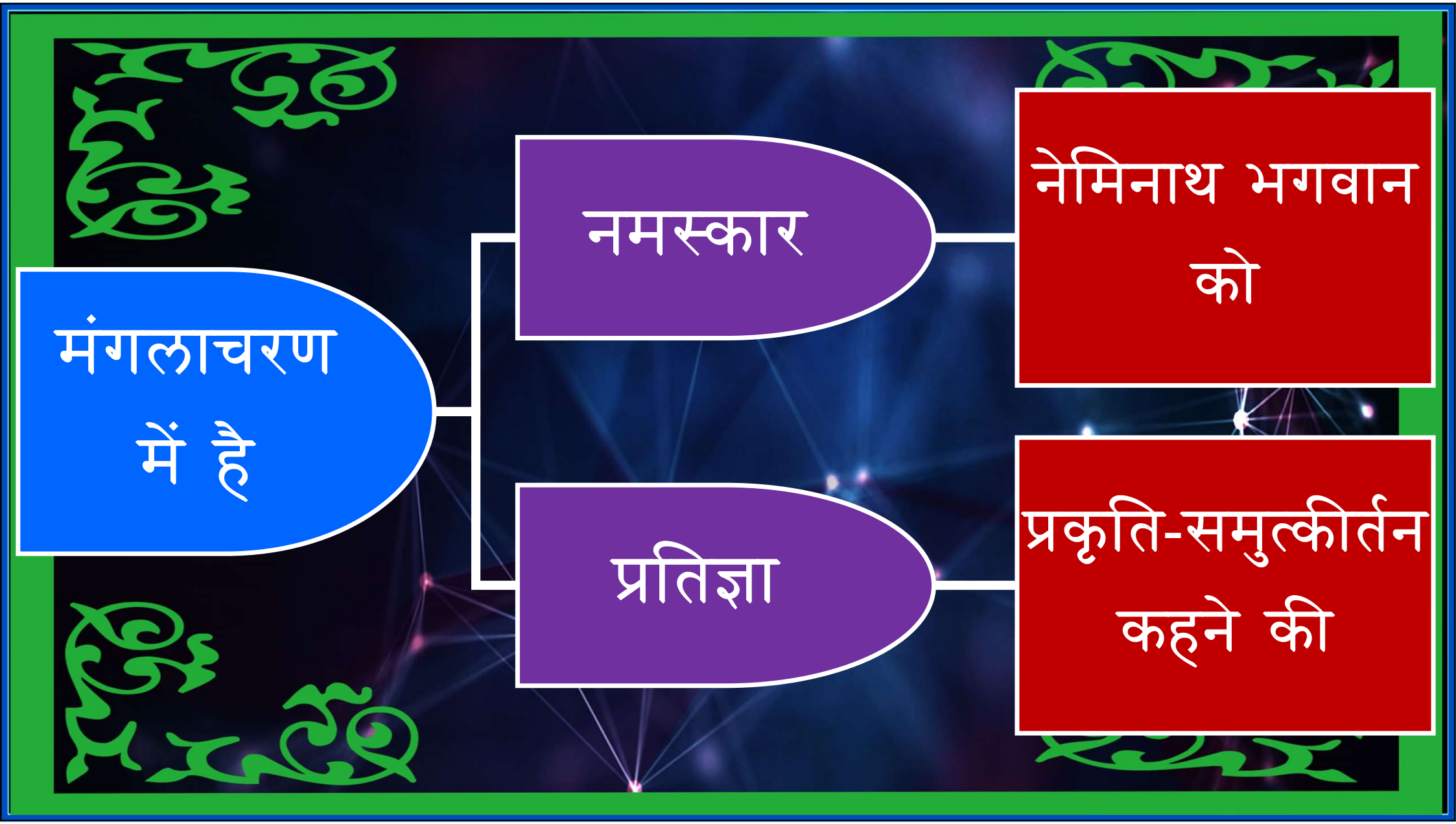
मंगलाचरण में है
नमस्कार
नेमिनाथ भगवान को
प्रतिज्ञा
प्रकृति-समुत्कीर्तन कहने की

**प्रकृति**

- ज्ञानावरण आदि कर्मों की मूल-उत्तर प्रकृतियों का

**समुत्कीर्तन**

- व्याख्यान

जिसमें है वह प्रकृति-समुत्कीर्तन अधिकार है ।

# प्रथम अधिकार की विषय-वस्तु

- जीव और कर्म का संबंध
- कर्म के भेद
- मूल 8 कर्मों के कार्य
- कर्मों के क्रम का कारण
- मूल-उत्तर कर्मों का स्वरूप
- कर्मों के विविध विभाजन
- कर्मों के नाम आदि 4 निक्षेप
- मूल-उत्तर कर्मों के नोकर्म

पयडी सील सहावो, जीवंगाणं अणाइसंबंधो ।
कणयोवले मलं वा, ताणत्थित्तं सयं सिद्धं ॥ 2 ॥

- अर्थ—कारण के बिना वस्तु का जो सहज स्वभाव होता है उसको प्रकृति, शील अथवा स्वभाव कहते हैं ।
- प्रकृत में यह स्वभाव जीव तथा अङ्ग (कर्म) का ही लेना चाहिये । इन दोनों में से जीव का स्वभाव रागादिरूप परिणमने का है और कर्म का स्वभाव रागादिरूप परिणमाने का है ।
- यह दोनों का संबंध, सुवर्ण-पाषाण में मिले हुए मल की तरह अनादिकाल से है । इसीलिये जीव तथा कर्म का अस्तित्व भी ईश्वरादि कर्ता के बिना ही अपने आप सिद्ध है ।

प्रकृति, शील, स्वभाव, Nature
ये एकार्थवाची हैं ।

प्रकृति =
कारण बिना जो
पदार्थ का
सहज स्वभाव
होता है ।

उदाहरण

आग का
ऊपर जाना

पवन का
तिरछा बहना

जल का
अधोगमन

# किसका स्वभाव ? क्या स्वभाव ?

| जीव का | कर्म का |
| --- | --- |
| रागादिरूप परिणमना | रागादि को उत्पन्न करना |

जीव और कर्म का अनादि संबंध है । जैसे— स्वर्ण-पाषाण

## प्रश्न— अमूर्तिक जीव को मूर्तिक कर्म का बन्ध कैसे हो सकता है?

उत्तर— अनादि से ही ऐसा संबंध है, नवीन नहीं है ।
जो अनादि से ही है, इसमें तर्क कैसा ? तथा
जीव संसार अवस्था में कथंचित् मूर्तिक स्वीकार किया गया है
अतः बंध होता है ।

## प्रश्न— इन जीव और कर्म का अस्तित्व कैसे स्वीकारें ?

उत्तर— इनकी सिद्धि स्वयं से होती है ।

'मैं' — इस प्रकार की प्रतीति जीव को सिद्ध करती है ।

धनवान, गरीब, रूपवान, कुरूप आदि विचित्रता कर्म को सिद्ध करती हैं । अतः जीव और कर्म का अस्तित्व स्वयं सिद्ध है ।

देहोदयेण सहिओ, जीवो आहरदि कम्म णोकम्मं ।
पडिसमयं सव्वंगं, तत्तायसपिंडओव्व जलं ॥ 3 ॥

- अर्थ—यह जीव औदारिक आदि शरीरनाम कर्म के उदय से योगसहित होकर ज्ञानावरणादि आठ कर्मरूप होने वाली कर्मवर्गणाओं को तथा औदारिक आदि चार शरीररूप होने वाली नोकर्मवर्गणाओं को हर समय चारों तरफ से ग्रहण करता है ।
- जैसे कि आग से तपा हुआ लोहे का गोला पानी को सब ओर से अपनी तरफ खींचता है ।

# जीव

| | | |
|---|---|---|
| **किसके उदय से** | कार्मण शरीर नामकर्म के उदय से | औदारिक आदि शेष शरीर नामकर्म के उदय से |
| **किसे** | कार्मण वर्गणा को | कार्मण, आहार वर्गणा को |
| **कब** | विग्रहगति में | विग्रहगति छोड़कर प्रतिसमय |
| **कहाँ से** | सर्वात्म प्रदेशों से | |
| **क्या करता है?** | ग्रहण करता है । | |

उदाहरण — अग्नि से तप्त लोहे का पिण्ड जल को सोखता है ।

सिद्धाणंतिमभागं, अभव्वसिद्धादणंतगुणमेव ।
समयपबद्धं बंधदि, जोगवसादो दु विसरित्थं ॥ 4 ॥

- अर्थ—यह आत्मा, सिद्धजीवराशि के अनंतवें भाग और अभव्य जीवराशि से अनंतगुणे समयप्रबद्ध को अर्थात् एक समय में बंधने वाले परमाणुसमूह को बांधता है ।
- इतनी विशेषता है कि मन, वचन, काय की प्रवृत्तिरूप योगों की विशेषता से (कमती बढ़ती होने से) कभी थोड़े और कभी बहुत परमाणुओं का भी बंध करता है ।

# समयप्रबद्ध का प्रमाण

जो प्रतिसमय बांधा जाता है, वह समयप्रबद्ध कहलाता है ।

$\frac{\text{सिद्धराशि}}{\text{अनंत}}$ अथवा अभव्य राशि × अनन्त

जघन्य समयप्रबद्ध = स

उत्कृष्ट समयप्रबद्ध = स × असंख्यात

चूंकि जघन्य योग से उत्कृष्ट योग असंख्यात गुणा है, अत: जघन्य समयप्रबद्ध से उत्कृष्ट समयप्रबद्ध असंख्यात गुणा है । तथापि सामान्यपने $\frac{\text{सिद्धराशि}}{\text{अनंत}}$ प्रमाण ही है ।

जीरदि समयपबद्धं, पओगदोऽणेगसमयबद्धं वा ।
गुणहाणीण दिवड्ढं, समयपबद्धं हवे सत्तं ॥ 5 ॥

- अर्थ—एक-एक समय में कर्मपरमाणुओं का एक-एक समयप्रबद्ध फल देकर खिर जाया करता है । परन्तु कदाचित् तपश्चरणरूप विशिष्ट अतिशय वाली क्रिया के होने पर बंधे हुए अनेक समयप्रबद्ध भी एक समय में झड़ जाया करते हैं ।
- कुछ कम डेढ़ गुणहानिआयाम से गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण कर्म सत्ता में रहा करते हैं ॥ 5 ॥

# उदय, सत्त्व का प्रमाण

| | |
|---|---|
| उदय | • सामान्यरूप से 1 समयप्रबद्ध<br>• सातिशय क्रियासंयुक्त के असंख्यात समयप्रबद्ध |
| सत्त्व | • $\frac{3}{2}$ × गुणहानि × समयप्रबद्ध |

कम्मत्तणेण एक्कं, दव्वं भावोत्ति होदि दुविहं तु ।
पोग्गलपिंडो दव्वं, तस्सत्ती भावकम्मं तु ॥ 6 ॥

- अर्थ—सामान्यपने से कर्म एक ही है, उसमें भेद नहीं है । लेकिन द्रव्य तथा भाव के भेद से उसके दो प्रकार हैं ।
- उसमें ज्ञानावरणादिरूप पुद्गलद्रव्य का पिंड द्रव्यकर्म है और उस द्रव्यपिंड में फल देने की जो शक्ति वह भावकर्म है ।
- अथवा कार्य में कारण का व्यवहार होने से उस शक्ति से उत्पन्न हुए जो अज्ञानादि वा क्रोधादि-रूप परिणाम हैं वे भी भावकर्म ही हैं ॥ 6 ॥

# कर्म के भेद

| एक | दो | |
|---|---|---|
| कर्मभाव की अपेक्षा | द्रव्यकर्म | भावकर्म |
| | पुद्गल कर्म का पिण्ड | फल देने की शक्ति अथवा अज्ञान/क्रोधादि (कार्य में कारण का उपचार) |

तं पुण अट्ठविहं वा, अडदालसयं असंखलोगं वा ।
ताणं पुण घादित्ति, अघादित्ति य होंति सण्णाओ ॥ 7 ॥

- अर्थ—वह कर्म सामान्य से आठ प्रकार का है ।
- अथवा एक सौ अड़तालीस या असंख्यात लोकप्रमाण भी उसके भेद होते हैं ।
- उन आठ कर्मों में भी घातिया तथा अघातिया ये दो भेद हैं ॥ 7 ॥

# कर्म के भेद

| | |
|---|---|
| आठ | •ज्ञानावरण आदि 8 प्रकार की अपेक्षा |
| 148 | •उत्तर प्रकृतियों की अपेक्षा |
| असंख्यात लोक | •उत्तरोत्तर भेदों की अपेक्षा |

णाणस्स दंसणस्स य, आवरणं वेयणीयमोहणियं ।
आउगणामं गोदं-तरायमिदि अट्ठ पयडीओ ॥ 8 ॥

- अर्थ—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय – ये कर्मों की आठ मूल प्रकृतियाँ हैं ॥ 8 ॥

कर्मों के नाम एवं क्रम
ज्ञानावरण
दर्शनावरण
वेदनीय
मोहनीय
आयु
नाम
गोत्र
अन्तराय
आठ कर्म

आवरणमोहविग्घं, घादी जीवगुणघादणत्तादो ।
आउगणामं गोदं, वेयणियं तह अघादित्ति ॥ 9 ॥

- अर्थ—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अन्तराय – ये चार घातिया कर्म हैं क्योंकि जीव के गुणों को घातते हैं ।
- आयु, नाम, गोत्र और वेदनीय – ये चार अघाती कर्म हैं क्योंकि ये जीव के गुणों का घात घातिया कर्मों की भांति नहीं करते ॥ 9 ॥

# कर्म

| घातिया<br>(जीव के गुणों को घाते) | अघातिया<br>(जीव के गुणों को घातियावत् न घाते) |
| --- | --- |
| • ज्ञानावरण | • आयु |
| • दर्शनावरण | • नाम |
| • मोहनीय | • गोत्र |
| • अन्तराय | • वेदनीय |

# क्या कर्म जीव के गुणों को घातते हैं ?

- कर्म जीव के गुणों के घात में निमित्त होते हैं । कर्म व जीव में निमित्त-नैमित्तिक संबंध है, कर्ता-कर्म संबंध नहीं है ।
- जीव के परिणामों का मूल कारण जीव स्वयं ही है । उस समय निमित्त कारण कर्म का उदय आदि है ।
- इसी प्रकार बंध, उदय आदि कर्मरूप अवस्था होने का मूल कारण कार्मण वर्गणा स्वयं है । उस समय निमित्त कारण जीव के भाव हैं ।

| उपादान | निमित्त |
| --- | --- |
| जीव का अज्ञान | ज्ञानावरण कर्म का उदय |
| जीव में मोह, राग, द्वेष | मोहनीय का उदय |
| कर्म का बन्ध | जीव का मोहादि भाव |
| कर्म का संवर | जीव का सम्यक्त्व आदि भाव |

इसी प्रकार इस ग्रन्थ में सर्वत्र समझना ।

केवलणाणं दंसण-मणंतविरियं च खयियसम्मं च ।
खयियगुणे मदियादी, खओवसमिए य घादी दु ॥ 10 ॥

- अर्थ—केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्तवीर्य और क्षायिक सम्यक्त्व तथा
- च शब्द से क्षायिक चारित्र और क्षायिक दानादि; इन क्षायिक भावों को तथा
- मतिज्ञान आदि (मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय इत्यादि) क्षायोपशमिक भावों को भी ये ज्ञानावरणादि चार घातिया कर्म घातते हैं ॥ 10 ॥

# कौन-सा कर्म क्या घातने में कारण ?

| गुण | कर्म |
|---|---|
| क्षायिक ज्ञान, क्षायोपशमिक ज्ञान | ज्ञानावरण |
| क्षायिक दर्शन, क्षायोपशमिक दर्शन | दर्शनावरण |
| औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व | दर्शन मोहनीय |
| औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक चारित्र | चारित्र मोहनीय |
| क्षायिक और क्षायोपशमिक दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य | अंतराय |

कम्मकयमोहवड्ढिय-संसारम्हि य अणादिजुत्तम्हि ।
जीवस्स अवट्ठाणं, करेदि आऊ हलिव्व णरम् ॥ 11 ॥

- अर्थ—कर्म के उदय से उत्पन्न हुआ और मोह अर्थात् अज्ञान, असंयम तथा मिथ्यात्व से वृद्धि को प्राप्त हुआ संसार अनादि है ।
- उसमें जीव का अवस्थान रखने वाला आयुकर्म है । वह उदय-रूप होकर मनुष्यादि चार गतियों में जीव की स्थिति करता है ।
- जैसे कि काठ (खोड़ा) जो कि जेलखानों में अपराधियों के पाँव को बाँधने के लिये रहता है, उसके छेद में जिसका पैर आ जाये उसको बाहिर नहीं निकलने देता, उसी प्रकार उदय को प्राप्त हुआ आयुकर्म जीवों को उन-उन गतियों में रोककर रखता है ॥ 11 ॥

# आयुकर्म का कार्य

- कर्म से बनाया
- मोह से वर्धित
- अनादि से चला आया

ऐसे चतुर्गतिरूप संसार में जीव को अवस्थित रखता है ।

जैसे पैर में फँसायी गयी ऐसी बेड़ी, जिससे प्राणी वहाँ से हिल भी नहीं सकता ।

गदिआदि जीवभेदं, देहादी पोग्गलाण भेदं च ।
गदियंतरपरिणमनं, करेदि णामं अणेयविहं ॥ 12 ॥

- अर्थ—नामकर्म, गति आदि अनेक तरह का है। वह नारकी वगैरह जीव की पर्यायों के भेदों को,
- औदारिक शरीर आदि पुद्गल के भेदों को तथा
- जीव के एक गति से दूसरी गतिरूप परिणमन को करता है ।

# नामकर्म का कार्य

| जीव विपाकी | पुद्गल विपाकी | क्षेत्र विपाकी | भव विपाकी |
| --- | --- | --- | --- |
| नारक आदि जीव के पर्यायों के भेद करना | औदारिक शरीर आदि पुद्गल के भेद करना | एक गति से अन्य गतिरूप परिणमन करना | एक गति में रहना |

संताणकमेणागय-जीवायरणस्स गोदमिदि सण्णा ।
उच्चं णीचं चरणं, उच्चं णीचं हवे गोदं ॥ 13 ॥

- अर्थ—कुल की परिपाटी के क्रम से चला आया जो जीव का आचरण उसकी गोत्र संज्ञा है अर्थात् उसे गोत्र कहते हैं ।
- उच्च आचरण को उच्च गोत्र कहते हैं तथा
- नीच आचरण को नीचगोत्र कहा जाता है ॥ 13 ॥

# गोत्रकर्म का कार्य

संतान-क्रम से आगत जीव के आचरण को गोत्र कहते हैं ।

अक्खाणं अणुभवणं, वेयणियं सुहसरूवयं सादं ।
दुक्खसरूवमसादं, तं वेदयदीदि वेदणियं ॥ 14 ॥

- अर्थ—इन्द्रियों के रूपादि विषय का अनुभव करना वेदनीय है ।
- उसमें दुःखस्वरूप अनुभव करना असाता है और सुखस्वरूप अनुभव करना साता है ।
- उस सुख-दुःख का अनुभव जो कराता है वह वेदनीय कर्म है ॥ 14 ॥

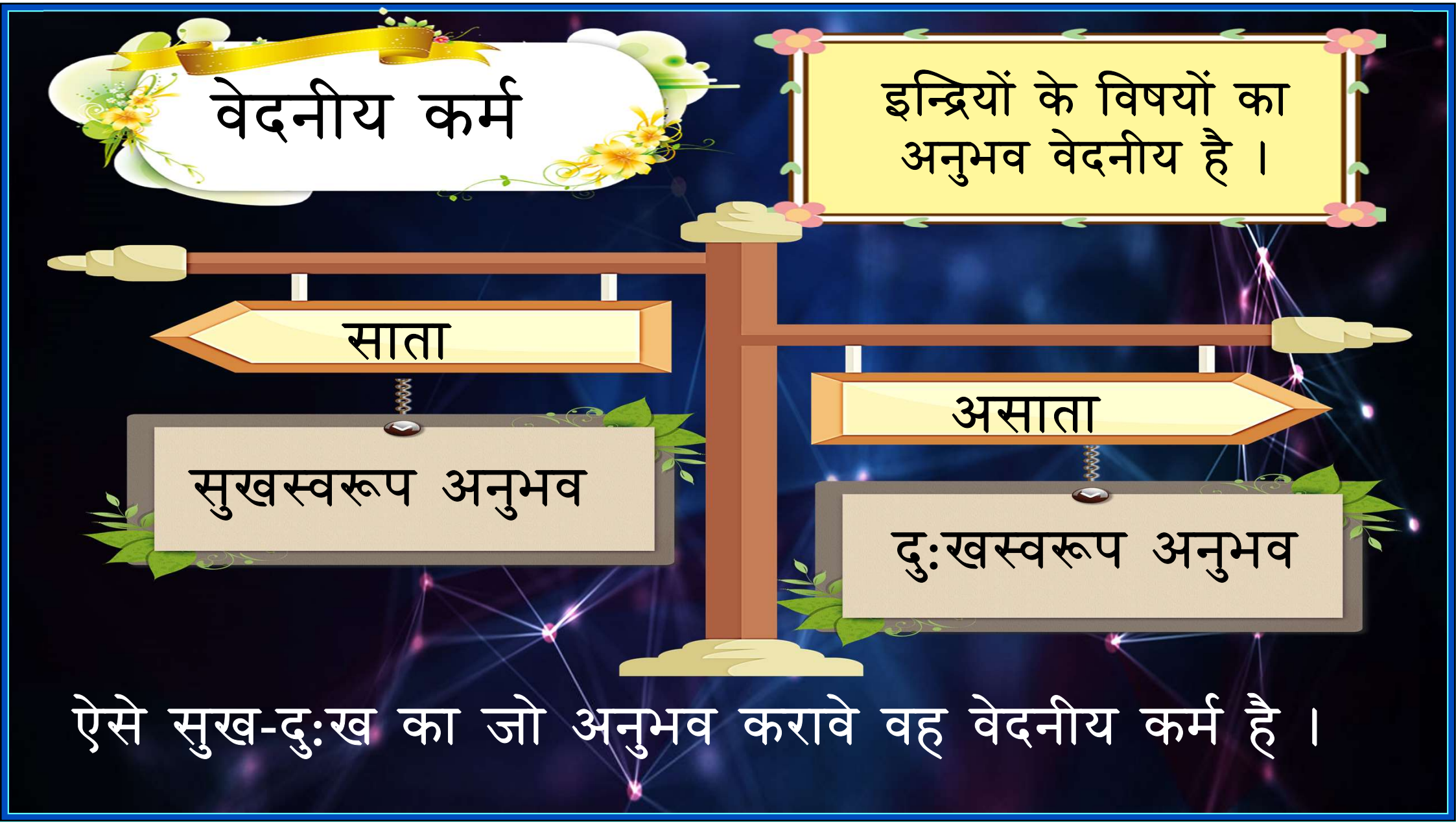
वेदनीय कर्म
इन्द्रियों के विषयों का अनुभव वेदनीय है ।
साता
असाता
सुखस्वरूप अनुभव
दुःखस्वरूप अनुभव
ऐसे सुख-दुःख का जो अनुभव करावे वह वेदनीय कर्म है ।

अत्थं देक्खिय जाणदि, पच्छा सद्दहदि सत्तभंगीहिं ।
इदि दंसणं च णाणं, सम्मत्तं होंति जीवगुणा ॥ 15 ॥

- अर्थ—संसारी जीव पदार्थ को देखकर जानता है ।
- पीछे सात भङ्ग (भेद) वाली नयों से निश्चय कर श्रद्धान करता है ।
- इस प्रकार दर्शन, ज्ञान और सम्यक्त्व – ये जीव के तीन गुण होते हैं ॥ 15 ॥

# जीव के गुण

जीव

| | |
|---|---|
| अर्थ को देखता है | दर्शन गुण |
| फिर जानता है | ज्ञान गुण |
| फिर निश्चय करता है | ज्ञान गुण |
| फिर श्रद्धान करता है | सम्यक्त्व गुण |

अब्भरहिदादु पुव्वं, णाणं तत्तो हि दंसणं होदि ।
सम्मत्तमदो विरियं, जीवाजीवगदमिदि चरिमे ॥ 16 ॥

- अर्थ—आत्मा के सब गुणों में ज्ञानगुण पूज्य है, इस कारण सबसे पहले ज्ञान को कहा है ।
- उसके पीछे दर्शन कहा है और उसके बाद सम्यक्त्व कहा है । तथा
- वीर्य शक्तिरूप है । वह जीव और अजीव दोनों में पाया जाता है । इसी कारण वह सबके पीछे कहा गया है ।
- इसीलिये इन गुणों के घातने वाले ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय – इन चारों कर्मों का भी यही क्रम माना है ॥ 16 ॥

# घातिया कर्मों के क्रम का कारण

| | |
|---|---|
| ज्ञान | • 1) ज्ञान सर्व गुणों में पूज्य है और<br>• 2) अल्पाक्षर वाला है, अत: ज्ञान को सबसे पहले कहा । |
| दर्शन | • फिर चेतनात्मक दर्शन गुण को कहा । |
| सम्यक्त्व | • ज्ञान-दर्शनपूर्वक श्रद्धान होता है, अत: सम्यक्त्व उसके पश्चात् कहा । |
| वीर्य | • वीर्य जीव व पुद्गल दोनों में पाया जाता है, अत: अन्त में कहा । |

इस प्रकार इन गुणों को घातने वाले कर्मों का क्रम है —

ज्ञानावरण → दर्शनावरण → मोहनीय → अंतराय

घादीवि अघादिं वा, णिस्सेसं घादणे असक्कादो ।
णामतियणिमित्तादो, विग्घं पडिदं अघादि चरिमम्हि ॥17॥

- अर्थ—अन्तराय कर्म घातिया है तथापि अघातिया कर्मों की तरह समस्तपने से जीव के गुणों को घातने में वह समर्थ नहीं है ।
- नाम, गोत्र तथा वेदनीय इन तीनों कर्मों के निमित्त से ही वह अपना कार्य करता है, इस कारण अघातिया कर्मों के अन्त में उसको कहा है ॥ 17 ॥

# अंतराय को अंत में क्यों रखा ?

1) अंतराय घाति कर्म होने पर भी अघातिया की तरह है क्योंकि जीव के गुण का पूर्ण घात करने में समर्थ नहीं ।

2) नाम, गोत्र, वेदनीय के निमित्त से घात का कारण बनता है ।

3) जीव व अजीव सर्व पदार्थों में वीर्य पाया जाता है – यह बताने के लिए ।

आउबलेण अवट्ठिदि, भवस्स इदि णाममाउपुव्वं तु ।
भवमस्सिय णीचुच्चं, इदि गोदं णामपुव्वं तु ॥18॥

- अर्थ—नामकर्म का कार्य चारगतिरूप या शरीर की स्थितिरूप है । वह आयुकर्म के बल से ही है । इसलिये आयुकर्म को पहले कहकर पीछे नाम कर्म को कहा है ।
- शरीर के आधार से ही नीचपना वा उत्कृष्टपना होता है, इस कारण नामकर्म को गोत्र के पहले कहा है ।

# अघातिया कर्म के क्रम का कारण

| | |
|---|---|
| आयु | • आयु के बल से भव की अवस्थिति है । इसलिए सबसे पहले आयु कर्म कहा । |
| नाम | • भव होने पर ही शरीर वा चतुर्गतिरूप स्थिति है । इसलिए आयु के पश्चात् नाम कर्म कहा । |
| गोत्र | • भव का आश्रय करके नीच-उच्चपना होता है । इसलिए नाम के पश्चात् गोत्र कर्म कहा । |

घादिंव वेयणीयं, मोहस्स बलेण घाददे जीवं ।
इदि घादीणं मज्झे, मोहस्सादिम्हि पढिदं तु ॥19॥

- अर्थ—वेदनीय कर्म, मोहनीय कर्म के बल से ही घातिया कर्मों की तरह जीवों का घात करता है ।
- इस कारण अर्थात् घातिया की तरह होने से घातियाओं के मध्य में तथा मोहकर्म के पहिले इस वेदनीयकर्म का पाठ किया गया है ।

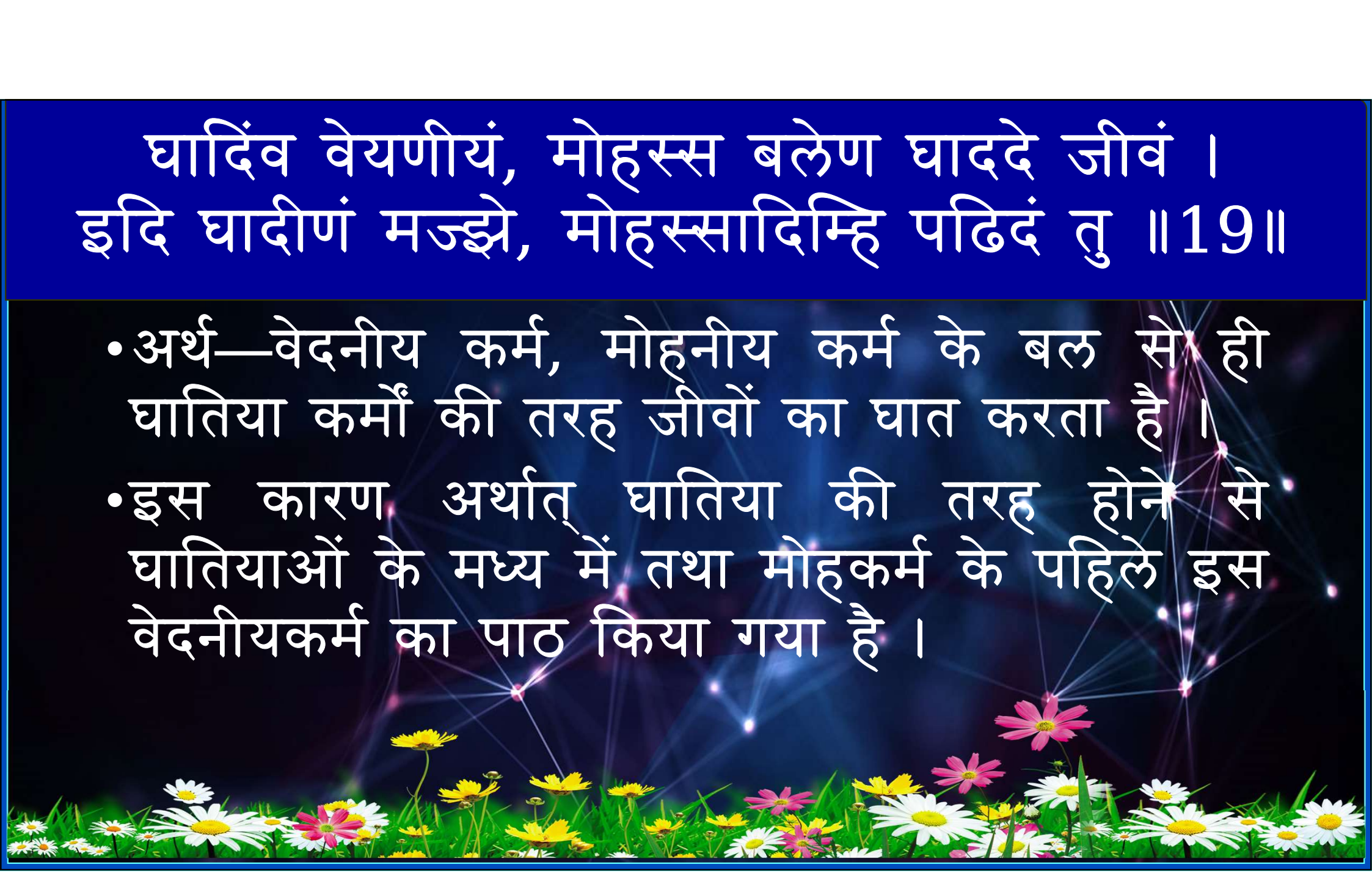

# वेदनीय

वेदनीय कर्म घातिया कर्मवत् है । क्योंकि —

1) इन्द्रियों के विषय का अनुभव करवाकर घात करता है ।

2) रति-अरति कषाय के बल से ही जीव का घात करता है, उसके बिना नहीं ।

इसलिए वेदनीय को मोहनीय के पूर्व कहा है ।

णाणस्स दंसणस्स य, आवरणं वेयणीयमोहणियं ।
आउगणामं गोदंतरायमिदि पढिदमिदि सिद्धं ॥ 20 ॥

- अर्थ—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय – इस प्रकार जो पाठ का क्रम है वह पहले पाठ की तरह ही सिद्ध हुआ ॥ 20 ॥

# कर्मों के क्रम का कारण

| कर्म | कारण |
|---|---|
| 1. ज्ञानावरण | ज्ञान के पूज्य होने के कारण |
| 2. दर्शनावरण | दर्शन भी चेतनात्मक गुण है |
| 3. वेदनीय | घाति समान होने से, मोह बिना असमर्थ होने से |
| 4. मोहनीय | सम्यक्त्व ज्ञान-दर्शन के पश्चात् ही होता है । |
| 5. आयु | अघाति होने से |
| 6. नाम | आयुपूर्वक ही चतुर्गति होने से |
| 7. गोत्र | भवपूर्वक ही नीच-उच्चपना होने से |
| 8. अन्तराय | जीव-अजीव में साधारण होने से |

पडपडिहारसिमज्जा-हलिचित्तकुलालभंडयारीणं ।
जह एदेसिं भावा, तहवि य कम्मा मुणेयव्वा ॥ 21 ॥

- अर्थ—पट अर्थात् देवता के मुख पर पड़ा वस्त्र,
- प्रतीहार अर्थात् राजद्वार पर बैठा हुआ द्वारपाल,
- असि (शहद लपेटी तलवार की धार),
- शराब,
- काठ का यंत्र—खोड़ा या हलि,
- चित्रकार,
- कुंभकार,
- भंडारी (खजांची),
- इन आठों के जैसे-जैसे अपने-अपने कार्य करने के भाव होते हैं उसी तरह क्रम से कर्मों के भी स्वभाव समझना ॥ 21 ॥

# ज्ञानावरण कर्म

ज्ञानं आवृणोति

ज्ञान को आवरण करे, आच्छादित करे वह ज्ञानावरण कर्म है ।

जैसे— प्रतिमा पर पड़ा वस्त्र ।

# दर्शनावरण कर्म

दर्शनं आवृणोति

दर्शन को आवरण करे, आच्छादित करे वह दर्शनावरण कर्म है ।

जैसे— राजद्वार पर खड़ा द्वारपाल ।

# वेदनीय कर्म

‘वेदयति’

सुख-दुःख का वेदन कराये वह वेदनीय कर्म है ।

जैसे— शहद लपेटी खड्ग की धार

# मोहनीय कर्म

‘मोहयति’

मोहित, असावधान करे वह मोहनीय कर्म है ।

जैसे— मदिरा, धतूरा

# आयु कर्म

‘एति’

पर्याय धारण करने के लिए प्राप्त होती है वह आयु कर्म है ।

जैसे— खोड़ा, सांकल, बेड़ी

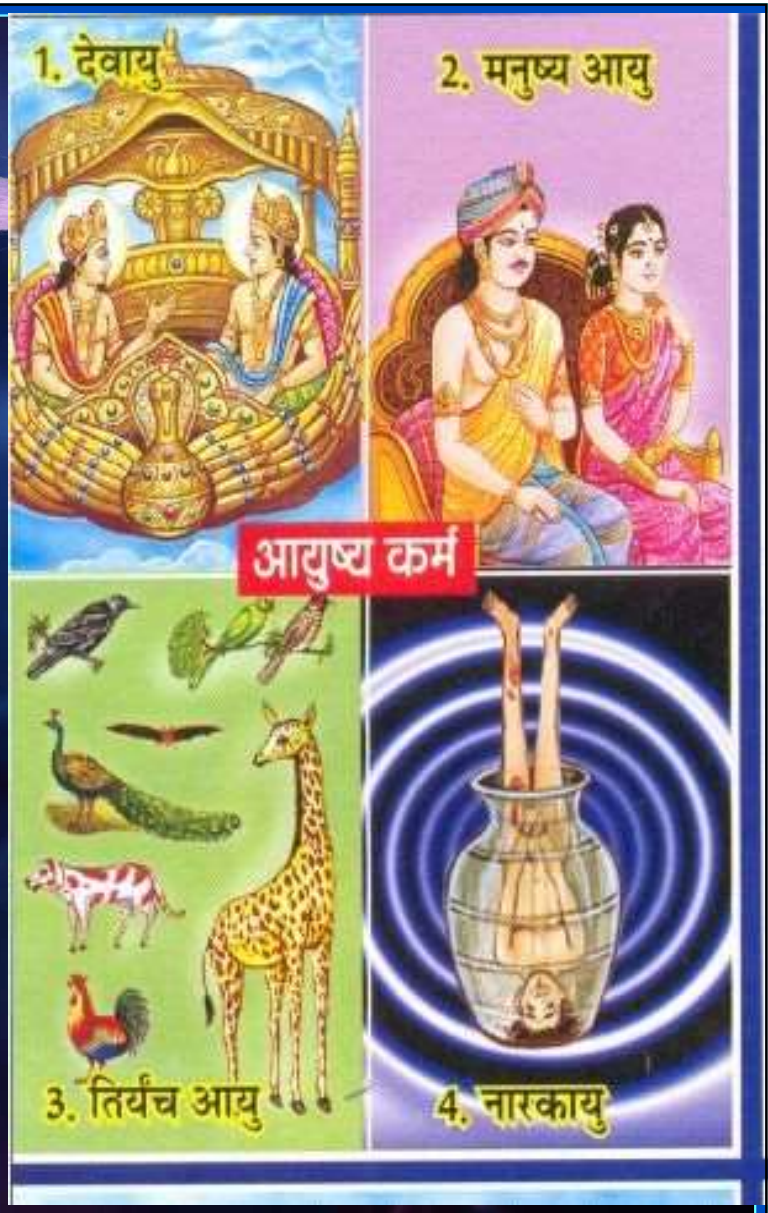

# नाम कर्म

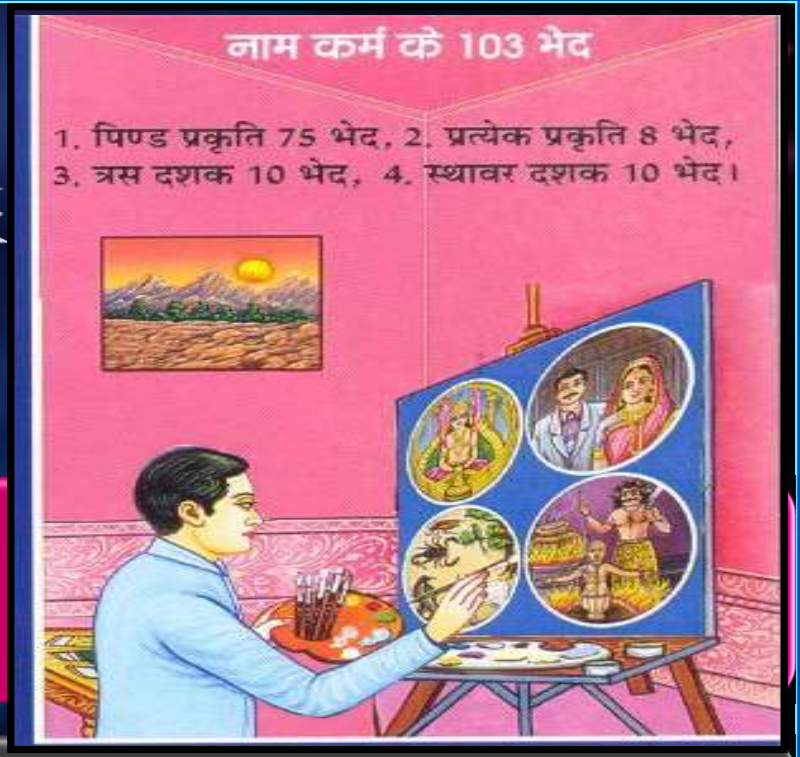


‘नाना मिनोति’

नाना प्रकार के कार्य निष्पादन करे वह नाम कर्म है ।

जैसे— चित्रकार अनेक चित्र बनाता है ।

# गोत्र कर्म

‘गमयति’

उच्च-नीचपने को प्राप्त कराये, वह गोत्र कर्म है ।

जैसे— कुंभकार बड़े-छोटे बर्तन बनाता है ।

# अंतराय कर्म

‘अंतरं एति’

दाता, पात्र आदि में परस्पर अंतर को प्राप्त कराये वह अंतराय कर्म है ।

जैसे— भंडारी, कोषगार